रोज़गार की जंग

रीतिका खेरा

राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी कानून, जो "नरेगा" के नाम से भी जाना जाता है, अगस्त २००५ में पारित हुआ और फरवरी २००६ में देश के २०० जिलों में लागू हुआ. आज यह देश के सभी जिलों में लागु है. रोज़गार गारंटी कानून ग्रामीण इलाकों में रहने वाले सभी परिवारों को साल में १०० दिन रोज़गार की गारंटी देता है, बशर्ते की वे न्यूनतम मजदूरी पर काम करने के लिए तैयार हों. इस कानून के तहत अगर काम मांगने के १५ दिनों में काम न मिले, तो उस मजदूर को बेरोज़गारी भत्ता मिलेगा. कानून के तहत गाँव में ही काम दिया जायेगा (जिसमें रोड, तालाब, कुआँ निर्माण आदि शामिल हैं). इस कानून की खूबसूरती येही है की जब मुसीबत का सामना हो, जैसे आजकल का सुखा, तब गाँव में काम पाकर गरीब परिवार अपने गुज़ारा चला सकते हैं.

तीन वर्षों में इसका अनुभव कुछ मिला-जुला रहा है. एक तरफ तो राजस्थान जैसे राज्य हैं जहाँ लोगों ने डट कर काम पाया है - वहां २००७-८ में, प्रति ग्रामीण परिवार काम के दिनों की औसत थी ६८ दिन. इसके मुकाबिले में देश में औसत केवल १६ दिनों की रही. तमिल नाडू, केरल और राजस्थान राज्यों में महिलाओं की भागीदारी ७०% के आसपास रही लेकिन दूसरी ओर उत्तर प्रदेश ओर पश्चिमी बंगाल जैसे राज्य भी हैं जहाँ महिलाओं की भागीदारी २०% से भी कम थी.

मध्य प्रदेश के बडवानी जिले में "जागृत आदिवासी दलित संगठन" सक्रिय है. आदिवासियों और दलितों के इस संगठन में मुख्य रूप से खेतिहर मजदूर शामिल हैं. जब रोज़गार गुअरंटी कानून पारित हुआ तो इस संगठन ने इसकी पेचिदागिओं को समझा, और कानून के अनुसार ही चलने का फैसला किया. यदि प्रशासन की ओर से काम खोले गए, तो उन्होंने पहेले काम के आवेदन का फॉर्म भरने की प्रक्रिया पर जोर दिया ताकि उनके पास काम मांगने का सबूत हो. आवेदन की रसीद के बिना उन्होंने प्रशासन के काम करने के आमंत्रण को नहीं स्वीकारा. इसके फलस्वरूप कानून के पहेले ही वर्ष में संगठन के क्षेत्र के कई गावों में 1574 मजदूर बेरोज़गारी भत्ते के हक़दार बने, और छे महीनों के संघर्ष उपरांत उन्होंने भत्ता भी लिया. आज उसी क्षेत्र में यह स्थिति है की आधे से ज्यादा परिवारों ने २००७-८ में इस कानून के तहत १०० दिनों का रोज़गार पूरा किया. और काम के दिनों की औसत है ८५ दिन. संगठन के क्षेत्र में रोज़गार गारंटी कानून को गाँव के विकास के ज़रिये के रूप में समझा जा रहा है. एक समय में गुजरात पलायन करनेवाले परिवार, अब ग्राम सभाओं में हिस्सा लेकर कामों के सुझाव दे रहें हैं ताकि वही काम खोले जाएँ जिनसे गाँववालों को मतलब है.

दूसरी कहानी है झारखण्ड के मनिका प्रखंड (लातेहार जिला) से. वहां की कोपे पंचायत के भूखन सिंग ओर नियामत अंसारी ने २००७ में निश्चय किया कि वे अपने गाँव में नरेगा को नियमानुसार चलाएंगे ओर गाँव के लोगों को इसका ज्यादा से ज्यादा फायदा मिले उसमें उनकी मदद करेंगे. जब सामूहिक काम के आवेदन प्रखंड कार्यालय में जमा करने की कोशिश की, तो यह उनकी पहली लडाई बनी - ठेकेदारों (जिन पर कानूनी मनाही है) ओर प्रखंड विकास पदाधिकारी से अनबनी की शुरुआत हुई. अक्टूबर 2008 में रात के अँधेरे में कुछ लठैतों ने दोनों पर हमला किया. वे बच गए, लेकिन काम नहीं शुरू हुए ओर ना ही भत्ता मिला. तो कोपे निवासी धरना पर बैठे. इसके बाद कुछ काम तो मिला लेकिन साथ ही दुश्मनी बढ़ी. इस साल होली के अगले दिन उनके गाँव पर फिर से हमला हुआ: ३०-४० लोगों ने गाँव में आकर कोपे वालों को पीटना शुरू किया. एक महिला के सर पर भी चोट आई ओर कई अन्य को बुरी तरह से पीटा गया. यह सब इस लिए कि फरवरी २००९ की लोक अदालत में कोपे के १७५ मजदूरों की बेरोज़गारी भत्ते की मांग को सही मानते हुए उन्हें भत्ता दिया गया, जिसे BDO और ठेकेदार अपनी हार मानते हैं. लडाई अभी जारी है - २००८ की मजदूरी अभी भी बकाया है. प्रखंड पदाधिकारी अपनी ताकत जताने के नज़रिए से नहीं दे रही.

यह दो कहानियां रोज़गार गारंटी कानून के दो अहम् पेहेलुओं को दर्शाती हैं. एक तरफ यह लोगों के जीने का आधार बना है, तो दूसरी ओर लोगों की जान को खतरे में डाला है. पहेली कहानी इस कानून से जुडी सम्भावओं की झलक देती है, तो दूसरी से यह पता चलता है कि उस मंजिल तक पहुचने के लिए एक लम्बा सफ़र तय करना बाकी है.

इस कानून का आंकलन करने के लिए यह अच्छा समय है, क्योंकि इसे लागू हुए तीन साल हो चुके हैं, और हाल ही में बनी कांग्रेस सरकार इसे ही अपनी जीत का कारण समझ रही हैं. शायद येही वजह है की नए ग्रामीण विकास मंत्री, श्री सी पि जोशी, कानून में काफी रूचि ले रहे हैं और इस में कुछ नया करने की सोच में हैं.

ग्रामीण इलाकों में रहने वाले करोडों मजदूरों के लिए ख़ुशी की बात है की सरकार इस कानून में रूचि ले रही है, क्योंकि रोज़गार गारंटी कानून उनके जीवन में जो महत्व रखता है उसे सरकार अभी भी नहीं समझ पाई है. शायद यही कारण है कि इसे जिस मंशा से लाया गया था, अब तक उस मंशा से लागू कुछ ही जगहों पर किया गया है. इस लेख में इन दोनों पेहेलुओं पर रौशनी डालने का प्रयास किया गया है. मई-जून २००८ में छे राज्यों (राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, बिहार और उत्तर प्रदेश) में किये गए 1060 नरेगा मजदूरों के सर्वेक्षण से जो सकारात्मक पहेलु सामने आये उन पर चर्चा कि गयी है, ओर फिर समस्याओं पर चर्चा की गयी है.

कुछ सकारात्मक पहेलु

रोज़गार गारंटी कानून से लोगों को गाँव में रोज़गार मिला है जिसके बदले में उन्हें न्यूनतम मजदूरी भी मिली. सर्वे में जिन मजदूरों से बात हुई उनके परिवारों को, पिछले १२ महीनों में, ४३ दिनों (औसत) का रोज़गार मिला. जिन्हें नरेगा मजदूरी मिली उनके लिए इसका सबसे बड़ा फायदा यह है की काम के लिए पलायन करने की ज़रुरत कम होती जाती है. पलायन से जुडी दिक्कतें अब नहीं सहनी पड़ती.

सर्वे के अनुसार तकरीबन आधे कार्यस्थलों पर सभी मजदूरों ने सरकारी न्यूनतम मजदूरी पायी. यह अपने आप में एक बड़ी उपलब्धि है क्योंकि ग्रामीण शेत्रों में, किसी भी काम के लिए, सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी मुश्किल ही मिलती थी. उत्तर प्रदेश के कई हिस्सों में आज भी गाँव में खेत मजदूरी की दरें (जो नरेगा के आने से कुछ बढ़ी हैं) रु. ३०-५०/दिन है, जबकि नरेगा में आज लोग रोज़ के रु. १०० कमा रहे हैं. खेतिहर मजदूरों के लिए, गाँव में न्यूनतम मजदूरी मिलना एक सपना सच्चा होने से कम नहीं है.

महिलाओं के जीवन में रोज़गार गारंटी कानून की बहुत अहम् भूमिका है. उत्तरी भारत की महिलाओं के लिए गाँव में न्यूनतम मजदूरी पर मांगने पर काम मिलना एक ऐसा सपना है जिसे वेह देखने की कल्पना भी शायद नहीं कर पाती हों. महिला सशक्तिकरण के लिए यह कानून उम्मीद की नयी किरण के रूप में उभरा है. सर्वे के दौरान हमने ३०० से ज्यादा महिलाओं से बात की. उनकी बातों से यह साफ़ पता चलता है कि इस मजदूरी के पैसों से उन्हें रोज़मर्रा के ज़रूरतों को पूरा करने में बहुत मदद मिली है, साथ ही उनका आत्मविश्वास बढा है. राजस्थान के सिरोही जिला की हस्की, जो आदिवासी महिला हैं, ने हमसे कहा - "मैं घर कि मुखिया हूँ" - यह उस ही आत्माविश्वास तो दर्शाता है. यह भी याद रखना ज़रूरी है कि महिलाओं की जहाँ भागीदारी अच्छी रही है वहां इसका फायदा सारे परिवार को हुआ है, खास कर बचों को.

इसके अलावा गाँव में कुछ संसाधन भी तैयार हुए है - कहीं सड़कें बनी है, तो कहीं तालाबों का निर्माण हुआ है. आदिवासियों और दलितों की ज़मीनों का समतलीकरण होने से उन्हें मजदूरी के साथ साथ यह फायदा हुआ की उनकी ज़मीनें और उप्जोऊ हुईं हैं. मनिका का ही उदहारण लीजिये - जंगल में एक टोला था, जहाँ बीमार व्यक्ति को साइकिल पर लाने लायक पगडण्डी भी नहीं थी. नरेगा के तहत एक कच्ची सड़क बनायीं गयी, जिसके लिए आसपास के उबड़-खाबड़ खेतों की ज़मीन का समतलीकरण भी हो सका है, जिस पर धान उगाने की तैयारी की जा रही है.

क्रियान्वयन में अड़चनें

इस कानून की सफलता के लिए लोगों में कानून के प्रावधान और हकों के बारे में जागरूकता होना ज़रूरी है.

गावों में जब भी हमने इस हक़ के बारे में लोगों को बताया, कि अब मांगने पर सरकार उन्हें गाँव में ही काम देगी, और काम न दे पाने की स्थिति में उन्हें घर बैठे ही बेरोज़गारी भत्ता मिलेगा, तो उन्होंने हम शक और अविश्वास कि नज़रों से देखा. उनके लिए ऐसी कल्पना करना भी दूर की बात थी. और जब लोग जानेंगे नहीं, तो काम मांगेंगे कैसे? सर्वेक्षण में हमने पाया कि केवल ५० प्रतिशत ही नरेगा के सबसे "बेसिक" प्रावधानों के बारें में जानते थे. जब नरेगा कार्यों पर काम करने वाले मजदूरों का यह हाल है, तो आप समझ सकतें है कि अन्य मजदूरों में जागरूकता के अभाव की समस्या कितनी और गंभीर होगी.

दूसरी बात यह है कि जहाँ लोगों ने नियमानुसार काम मांगने की कोशिश की है वहां उन्हें धक्के या डंडे खाने पड़े हैं. चाहे आप बडवानी जिले (मध्य प्रदेश) के जागृत आदिवासी दलित संगठन की बात लें या आप लातेहार (झारखण्ड) में मनिका प्रखंड के कार्यकर्ताओं की लडाई की बात करें. काम का आवेदन लेने से इंकार, या लेने के बाद उसे नकार देना, ओर जब काम देने में असफल रहे, तो भत्ते कि जगह फर्जी पुलिस केसों में फसाना. इस तरह के किस्सों के पीछे है ठेकेदारों, सरकारी बाबु और राजनेताओं का भ्रष्ट गठजोड़ - जब तक यह कायम रहेगा, तब तक ऐसे किस्से होते रहेंगे.

इस गठजोड़ को तोड़ने की मंशा से ही पारदर्शिता और जवाबदेही के कड़े प्रावधान कानून में शामिल हैं. रोज़गार गारंटी कानून की एक विशेषता यह है की इसमें पैसों की चोरी रोकने के लिए कड़े प्रबंध किये गए हैं. इन में सबसे मज़बूत प्रावधान यह है की नरेगा से सम्बंधित सभी दस्तावेज़, कोई भी किसी भी समय देख सकता है. सरकारी कामों में चोरी का एक अहम् जरिया था कि मस्टर रोल में हाजरी बढा-चढा कर लिखी जाती थी. इस तरीके से प्राप्त अतिरिक्त पैसा, भ्रष्ट लोगों की जेब में पहुच जाता था. लेकिन इन प्रावधानों का उल्लंघन आम है, और इसके चलते कानून को लागू करने में पारदर्शिता का अभाव एक बड़ी अड़चन हैं.

चौथी दिक्कत मजदूरी भुगतान से सम्बंधित है. पिछले कुछ महीनों से, व्यापक रूप में, एक ओर बड़ी गंभीर समस्या पैदा हुई है - मजदूरी का भुगतान महीनों तक न होना. जब हम अप्रैल २००९ में झारखण्ड के खूंटी जिले पहुचे, तो पाया कि कम से कम १० पंचायतो में, दिसम्बर २००८ से जो काम हुआ उसका भुगतान अभी तक नहीं हुआ. रोज़गार गारंटी कानून में स्पष्ट लिखा है कि भुगतान किसी भी हालत में दो सप्ताह में हो जाना चाहिए. ऐसा न होने पर मजदूर मुआवजे के हक़दार बनाते हैं. इस तरह कि दिक्कतें ओर्रिसा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, कर्नाटक, महाराष्ट्र, पश्चिम बंगाल ओर उत्तर प्रदेश में भी सुनाने को आयीं है.

"नरेगा-२": एक नयी दिशा ?

तो ऐसी परिस्थितियों में सरकार की क्या प्राथमिकता होनी चाहिए? पिछले दो महीनों से "नरेगा-२" की काफी चर्चा हो रही है.

इसमें "convergence" (यानी नारेगे के कार्यों को अन्य विभागीय कार्यों से जोड़ना) की बात कही जा रही है. Convergence अपने आप में बुरा प्रस्ताव शायद ना भी हो. लेकिन नरेगा में पारदर्शिता के जो प्रावधान है, क्या वोह इन डिपार्टमेन्ट पर लागू होंगे? यह सब सोचे बिना अन्य डिपार्टमेन्ट को शामिल करना क्या समझदारी की बात है? और जहाँ ग्राम पंचायतो की जवाबदेही तय करने में दिक्कत आ रही हो, वहां अन्य डिपार्टमेन्ट को ऐसे रूप में शामिल करने से यह दिक्कत क्या और नहीं बढेगी? दूसरा प्रस्ताव है "राजीव गाँधी सेवा केंद्र" का गाँव-गाँव में निर्माण. लेकिन क्या इससे लोगों को काम मिलने में आसानी होगी, या फिर मजदूरी समय पर मिलने लागगी?

यदि सरकार नरेगा को वास्तव में सफल बनाना चाहती है, तो उन्हें स्पष्ट करना होगा कि वह कानून का उल्लंघन बिलकुल बर्दाश्त नहीं करेगी. जहाँ सामाजिक अंकेक्षण में भ्रष्टाचार के सबूत सामने आते हैं वहां दोषियों के खिलाफ एक्शन लिया जाए और उन्हें दण्डित किया जाए. उन पदाधिकारिओं को दण्डित करना होगा, जो मजदूरों के काम के आवेदन लेने से मना करते हैं. केंद्र सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि जहाँ लोगों को मांगने पर १५ दिनों में काम नहीं मिला वहां कि राज्य सरकार ऐसे मजदूरों को बेरोज़गारी भत्ता दे. जब कहीं मजदूरी भुगतान में १५ दिनों से ज्यादा देरी हो, वहां मजदूरों को मुआवजा मिले. यह सब हो सकता है - खूंटी (झारखण्ड) का उदहारण लीजिये. हमने सबसे पहले सभी मजदूरों का भुगतान करवाया. इसके बाद, लेबर कोर्ट में केस दायर कर २६५ मजदूरों को रु. २००० प्रति मजदूर का मुआवजा मिला. दुःख की बात तो यह है कि देश में यह पहला मौका था कि मजदूरों को मुआवजा मिला हो.

लेकिन इन सब की उम्मीद केवल सरकार से करना शायद सही नहीं होगा. यह बात ज़रूर है कि इन में से काफी कुछ सरकार की ही ज़िम्मेदारी है - जैसे कि काम मांगने पर काम खोलना, समय पर मजदूरी का भुगतान होना, आदि. लेकिन कुछ कमी हमारी ओर से भी रह गयीं हैं. जागरूकता फैलाने में, काम खुलवाने में सरकार ओर प्रशासन पर हावी होना - इसका बिडा हमें उठाना ज़रूरी है. संघर्ष और संगठन के बिना मंजिल पाना मुमकिन नहीं.